**eISSN 2581-8996**
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 4, Issue 01, Jan 2021

# जनसंख्या, विकास एवं पर्यावरण : वैश्विक प्रवृत्तियाँ और भारत

**1डा0 सरनपाल सिंह**

1सह प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय तिलहर, शाहजहांपुर, उ0प्र0

Received: 25 Nov 2020, Accepted: 30 Nov 2020, Published with Peer Reviewed on line: 31 Jan 2021

## Abstract

जनंसख्या, विकास व पर्यावरण एक त्रिआयामी प्रक्रिया है जो समय के चौथे आयाम में आबद्व है। जनसंख्या व पर्यावरण की आपसी क्रिया प्रतिक्रिया विकास की प्रक्रिया को जन्म देती है जो सकारात्मक भी हो सकता है तथा नकारात्मक भी। विकास की प्रक्रिया में मानव जनसंख्या एवं उसके आस–पास का वातावरण लक्ष्य भी होता है एवं साधन भी। समय के चौथे आयाम में विकास की वही प्रक्रिया सफल मानी जाती है जो न केवल इन दोनो में संतुलन बनाये रखें बल्कि दोनों को सकारात्मक दिशा को परिवर्तित कराने के साथ–साथ दोनों के अर्न्तसंबधों को स्वस्थ व मजबूत भी बनायें।[1]

आज के विश्व की सबसे दुखद स्थिति यह है कि जनसंख्या ही पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा मुददा बन गयी है। अनुमान के आधार पर यह धरती 6 अरब से 147 अरब लोगों को बोझ सह सकती है[2] मगर हालात यह है कि अभी से हाहाकार मच गया है। जलवायु परिवर्तन, कार्बन उत्सर्जन, ओजोन मंडल का क्षय, वैश्विक तापमान में वृद्धि आदि बेहद खतरनाक स्थिति की ओर इशारा कर रहे है। तेजी से नष्ट होते हुए जंगल, हवा पानी और मिट्टी में घुलता हुआ जहर, बेलगाम बढ़ती जनंसख्या आदि मानव जाति के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे है। यह सही है कि दीर्घकाल में शायद धरती अपने इस बिगड़े हुये संतुलन को पुनः हासिल भी कर ले, परन्तु शायद मानव जाति के पास इतना समय न हो।

**Keywords:** जनसंख्या, विकास, पर्यावरण, वैश्विक प्रवृत्तियाँ, मानव संसाधन, तकनीक, उत्पादन, आर्थिक वृद्धि और विकास के प्रतिरूप

## Introduction

ऐसा माना जा सकता है कि मानव संसाधन व तकनीक के मिलन से ही उत्पादन, आर्थिक वृद्धि और विकास के प्रतिरूप तय होते है। दुर्भाग्य से मानव आज जिस आधुनिकता के पीछे दौड़ लगा रहा है वह जीवित रहने की एक अत्यंत महंगी जीवन शैली के अतिरिक्त कुछ नही है और यह जीवन शैली सांधनों के संयमित उपयोग, पारम्परिक सद्भाव व संतोष के विरूद्ध है और प्रकृति की शत्रु है।[3] इस संबन्ध में मानव विकास रिपोर्ट 1998 का हवाला देना उचित ही प्रतीत होता है

''आज उपभोग तेजी से पर्यावरणीय संसाधनों को आधार को अपक्षयित कर रहा है और उपभोग–गरीबी–विषमता और पर्यावरण प्रदूषण का दुष्चक्र चल रहा है अगर यही प्रवृत्तियाँ विद्यमान रही और विषमता को कम करने तथा 'स्वच्छ तकनीकि' के विकास पर समुचित ध्यान नही दिया गया तो उपभोग व मानव विकास की यह पहेली और उलझने वाली है। वास्ततिक मुद्दा उपभोग नही बल्कि इसका वर्तमान प्रारूप एवं प्रभाव है।''[4]

अतः असली मुद्दा क्या है। क्या यह बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये भोजन उपलब्ध कराये यानी खाद्य सुरक्षा का प्रश्न है या आमूलचूल जीवन शैली में परिवर्तन का मुद्दा है? संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में रेड मीट का उत्पादन करने के लिए 70 प्रतिशत खाद्यान्न जानवरों को खिलाया जाता है। वैश्विक स्तर पर 40 प्रतिशत खाद्यान्न को खिलाया जाता है। इन जानवरों के मांस को बाद में प्रसाधित करते है और यह जनसंख्या के एक अत्यंत सूक्ष्म हिस्से की ही खाद्य आवश्यकता को पूरा कर पाता है इन जानवरों को पालने में बहुत ज्यादा पानी भी लगता है[5] अगर इस खाद्यान्न का प्रयोग सीधे मनुष्यों को खिलाने मे किया जाये तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अनाज के दाम काफी गिर सकते है, धरती से खाद्य समस्या आगामी कुछ दशकों के लिए पूर्णतया विलोपित हो सकती है, कृषि से भारी दबाव कुछ कम हो सकता है, जंगलों को संरक्षित करता कुछ और आसान हो सकता है, और जैव विविधता को बड़ावा दिया जा सकता है। तो क्या यह मुद्दा मांसाहार एवं शाकाहार का है? बिल्कुल नहीं। यह मुद्दा मानव जीवन के सवांग पक्षों से और बहु आयामी विवेकीकरण से संबंध रखता है और खाद्य समस्या का समाधान केवल उसका एक अंग है और खाद्य समस्या का समाधान भी देखें तो 'खाद्य समीकरण' में सभी उपभोक्ताओं को क्रय शक्ति प्रदान प्रदान किये हुये इसका कोई प्रभावी हल संभव नही है। जैसा कि अमर्त्यसेन ने भी रेखांकित किया है कि 'न केवल माल्थस के दो सदियों बाद, बल्कि वर्तमान में भी खाद्य उत्पादन में जनसंख्या वृद्धि की दर से लगातार ज्यादा तेजी से वृद्धि हो रही है। फिर भी यह कहना जरूरी है कि कुछ देशों में, खासकर उप सहारा अफ्रीकन देशों में, प्रति व्यक्ति खाद्य उत्पादन में कमी आ रही है। खाद्य समस्या मुख्यतः क्षेत्रीय है और इसका लेना देना मुख्यतः वितरण से है न कि उत्पादन के साथ।[6] खाद्य सुरक्षा के मुद्दे को केवल जनसंख्या एवं कुल खाद्य आपूर्ति से जोडकर देखने की बजाय अमर्त्यसेन की 'इनटाइटलमेन्ट' अप्रोच के साथ जोड़कर देखना प्रासंगिक होगा।[7]

अतः मोटे तौर पर कह सकते है कि बढ़ती हुई खाद्य समस्या का संबंध बढ़ती हुई गरीबी व विषमता से है। क्या वह बढ़ती हुई गरीबी, पर्यावरण को तबाह करने में निर्णायक भूमिका निभा रही है। क्या विश्व की गन्दी बस्तियों कहे जाने वाले देशों को इस सब की जिम्मेदारी लेकर इसकी कीमत चुकानी चाहिए? बुखारेस्ट, रियोडीजेनेरों, टेक्यों और कोपेनहेगेन सम्मेलनों में यह बार–बार सिद्ध हुआ है कि वास्तविकता इसकी ठीक उल्टी है। पर्यावरण को नुकसान पहुचानें में सर्वाधिक जिम्मेदार विकसित राष्ट्र है न कि विकासशील देश।

सच तो यह है कि आज अधिकांश देश इसलिए गरीब है क्योंकि कुछ देश बहुत ज्यादा अमीर है। जाहिर है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैली हुई विषमता का सबसे बडा कारण अल्पविकसित देशों का तकनीक, लाभ प्रत्यावर्तन, विपरीत व्यापार शर्तो एवं बहुपक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा

किया गया शोषण है जो आज भी बदस्तूर जारी है[8] और अगर अर्न्तराष्ट्रीय स्तर को छोड भी दे तो राष्ट्रीय स्तर पर भी गरीबी के कारण जनसंख्या ज्यादा है न कि जनसंख्या के कारण गरीबी। गरीबों के पास श्रम के अलावा कुछ बेचने को नही होता एक बच्चे को पैदा करने व पालने पोसने में आने वाली लागत उससे प्राप्त होने वाली लाभ की तुलना में अत्यंत कम होती है ओर इसलिए गरीबो के परिवार में ही ढेर सारे बच्चे होते है।[9,10]

## परिकल्पनायें

जनसंख्या, विकास एवं पर्यावरण : वैश्विक प्रवृत्तियाँ और भारत के अन्तर्गत कतिपय निम्नलिखित परिकल्पनायें रेखांकित की जा सकती हैं–

1– जनंसख्या, विकास व पर्यावरण एक त्रिआयामी प्रक्रिया है जो समय के चौथे आयाम में आबद्व है।

2– जनंसख्या, विकास व पर्यावरण एक त्रिआयामी प्रक्रिया है जो समय के चौथे आयाम में आबद्व है। जनसंख्या व पर्यावरण की आपसी क्रिया प्रतिक्रिया विकास की प्रक्रिया को जन्म देती है जो सकारात्मक भी हो सकता है तथा नकारात्मक भी।

3– विकास की प्रक्रिया में मानव जनसंख्या एवं उसके आस–पास का वातावरण लक्ष्य भी होता है एवं साधन भी। समय के चौथे आयाम में विकास की वही प्रक्रिया सफल मानी जाती है जो न केवल इन दोनो में संतुलन बनाये रखें बल्कि दोनों को सकारात्मक दिशा को परिवर्तित कराने के साथ–साथ दोनों के अर्न्तसंबधों को स्वस्थ व मजबूत भी बनायें।[1]

4– आज के विश्व की सबसे दुखद स्थिति यह है कि जनसंख्या ही पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा मुददा बन गयी है। अनुमान के आधार पर यह धरती 6 अरब से 147 अरब लोगों को बोझ सह सकती है[2] मगर हालात यह है कि अभी से हाहाकार मच गया है।

5– जलवायु परिवर्तन, कार्बन उत्सर्जन, ओजोन मंडल का क्षय, वैश्विक तापमान में वृद्धि आदि बेहद खतरनाक स्थिति की ओर इशारा कर रहे है। तेजी से नष्ट होते हुए जंगल, हवा पानी और मिट्टी में घुलता हुआ जहर, बेलगाम बढ़ती जनंसख्या आदि मानव जाति के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे है।

## अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसूची विधि और निरीक्षण प्रविधि का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अध्ययन संबंधी द्वितीय तथ्यों को विभिन्न शोध प्रबंधों, गजेटियर, शोध पत्रिकाओं एवं

समाचार पत्रों से डेटा एकत्रित्र व प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है। यह शोध–पत्र पुस्कालय अध्ययन पद्धति पर आधारित है।

कोल एवं हूवर भी उपरोक्त बात की पुष्टि करते है। जब वे कहते है कि 'अधिकतर गरीब परिवारों में अशिक्षा अंधविश्वास और ऊँची जन्म दरें पायी जाती है जो एक दूसरे को पुर्नःबलन करती है। कम शिक्षा के कारण बच्चे की माँ व बच्चे पर आने वाली लागत न्यूनतम होती है और बच्चे बहुत छोटी आयु से ही उत्पादन में लग जाते है और सामाजिक सुरक्षा का एक पारम्परिक साधन बन जाते है।[11] विकासशील देशों की अधिक जनसंख्या का शाश्वत राज तो यही प्रतीत होता है। समयकाल में इस कारक को औपनिवेशिक शोषण व स्वंतत्रयोत्तर युग में अल्पविकसित देशों में बनी अक्षम सरकारों ने ओर मजबूर किया है। किग्सले डेविस तथा फ्रेंक नोटस्टीन [12(a&b)] का जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त तो जनसंख्या की जन्म दर व मृत्यु दर के अन्तर के आधार पर जनसंख्या विस्फोट की आख्या करने वाला एक यात्रिंक सिद्धान्त मात्र है। सच बात तो यह है कि लोकतात्रिंक सरकारों की स्थापना, मेडिकल सुविधाओं की नियोजित स्थापना एवं महामारियों की संख्या में हुई कमी ने जन्म से अधिक मृत्यु दर को प्रभावित किया है जिसके कारण पिछले कुछ दशकों में भारत एवं चीन जैसे देशों में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति बन हुई है।

वास्तविकता यह है कि उच्च वर्ग वाले देशों में एक बच्चे को पालने की लागत, अल्पविकसित देशों में एक बच्चे को पालने की लागत से अत्यन्त ऊँची है। विकसित देशों का एक बच्चा अल्पविकसित देश के एक बच्चे की तुलना में 16 गुना अधिक विश्व के खाद्य, ऊर्जा एवं भौतिक संसाधनों का प्रयोग करता है तथा विश्व के उच्चतम आय वर्ग के 20 प्रतिशत लोग विश्व के 86 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग कर रहे है जबकि विश्व के निर्धनतम 20 प्रतिशत लोग वैश्विक संसाधनों का मात्र 03 प्रतिशत उपयोग कर रहे है। ''बड़ती हुई अमीरी और फिजुलखर्ची, स्वार्थपूर्ण उपयोग, आदतें उच्च आय वर्ग के लोगो की, यह वह चीजें है जो दुनिया भर में चिन्ता का विषय होना चाहिए, न कि बढ़ती हुई जनसंख्या।''[13]

जहाँ तक भारत का संबंध है तो सुब्रहमनयम स्वामी का मानना है कि ''भारत में उत्पादन के विस्तार की वृहद संभावनाऐं है। कृषि में अभी हम दुनिया भर में सबसे नीची प्रति हेक्टेयर उत्पादकता के स्तर पर है। उत्पादकता में 10 गुना वृद्धि के पश्चात भी हम जापान जैसे देशों से पीछे ही रहेंगे। इसका अर्थ यह है कि हम दस गुना जनसंख्या को खिला सकते है यदि हम कृषि तकनीक में दुनिया के वर्तमान स्तर को ही प्राप्त कर लें।[14] हालाकि यह बात काफी पहले कहीं गयी थी परन्तु फिर भी यह एक मोटा सत्य है कि दुनिया भर में, खासकर अल्पविकसित देशों में उत्पादकता वृद्धि की अभी काफी समभावनाएं हैं और विज्ञान हमेशा माल्थसवाद को गलत सिद्ध करता रहा है। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि अल्पविकसित देश अभी उपभोग के इतने नीचे स्तर पर है कि उनके द्वारा अभी भी पर्यावरण को इतनी अधिक क्षति नही पहुँचाई जा सकी है जितना

दबाव विकसित देशों की अत्यन्त अल्प जनसंख्या के द्वारा पर्यावरण पर डाला जा रहा है। वास्तव में यह जनसंख्या व पर्यावरणीय संसाधनों के बीच अंतर की स्वाभाविक समस्या नही है बल्कि इसका संबंध जानबूझ कर एक ऐसे विकास ढाँचों को प्रोत्साहन देने से है जो अत्यधिक कृत्रिम, विलासी, विकसित व पर्यावरण को हानि पहुचाने वाला तथा विकसित देशों की उच्च आय वर्ग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया गया है और बहुदेशीय निगमों के लिए धन कमाने का प्रमुख स्थापित जरिया है।

वर्ग तथा एक अच्छा खासा उच्च आय वर्ग है जो विदेशी निगमों के लिये आज उभरते हुए बाजारों में सर्वोच्च है। अतः ये निगम इन देशों में वही उच्च खपत–कम बचत वाला ढाँचा जो पर्यावरण का व संतोषी संयमी जीवन की सुन्दरता का शत्रु है, को लगातार बढ़ा रही है।[15] इसका अर्थ यह है कि निकट भविष्य में भारत जैसे देश में भी पर्यावरणीय मुद्दे गंभीर चुनौती के रूप में उभरेंगे। ऐसा होना प्रारम्भ हो चुका है नर्मदा बचाओं आंदोलन, सिंगुर परियोजना विवाद आदि केवल एक बानगी मात्र है। स्पेशल आर्थिक जोन के नाम किसी को भी स्थानीय जनता के अमूल्य संसाधनों की लूट का अवसर देना यथोचित प्रतीत नही होता। उत्पादन बड़ानें के नाम पर जो उत्पादन और उपभोग का ढाँचा समाज के संपन्न तबके के बाजार को लक्ष्य कर विकसित किया जाता है अन्ततः उसके शिकार गरीब, जो कि अल्पविकसित देशों मे बहुसंख्यक है, ही होते है। माइकेल ब्रोअर व वारेन लियोन रियो सम्मेलन के दौरान हुई बहस में उभरकर आये तर्क को सामने रखकर कहते है कि ''गरीब लोग पर्यावरण के मामले में शिकार है न कि दोषी। पर्यावरणीय संाधनों का क्षय एवं प्रदूषण मुख्यतः संपन्न वर्ग की उपभोग मांग को ही पूरा करने के कारण हुआ है। इस वर्ग की उपभोग की आदतों को बदलना ही पर्यावरण के क्षय तथा प्रदूषण को रोकने के लिए पहली वरीयता है चाहे भले ही बांगलादेश जैसे देशों मे जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है परन्तु फिर भी एक अतिरिक्त अमरीकी एक अतिरिक्त बांग्लादेशी की तुलना में कई गुना ज्यादा उपभोग कर रहा है।[16]

वास्तविकता यह है कि यूरोप और अमेरिका की अर्थव्यवस्थाऐं बुढ़ापें और अवसाद का सामना कर रही है। इन समाजों में लम्बे समय तक उपभोग को जो ढाँचा प्रोत्साहित किया गया है उसकी वजह से वहाँ संतान को पालने में किये जाने वाले त्याग की तुलना में त्वरित व वर्तमान में उपभोग को बड़ानें पर ही ज्यादा बल दिया गया है। विकसित देशों में 2009 में जन्म दर मृत्यु दर की तुलना में कम हो गयी है। 2050 तक विश्व की जनसंख्या 6.5 अरब से बढ़कर 9 अरब हो जाने की संभावना है जिसमें अधिकतर जनंसख्या वृद्धि गरीब देशों में होने की संभावना है। 2050 तक अल्पविकसित देशों में बूढें लोगो की संख्या व उनका भार आज की विकसित देशों जैसा हो जायेगा। अगर इस दौरान इन देशों में डेमोग्राफिक डिविडेंड का लाभ नही उठाया गया तो 2050 में इन देशों की स्थिति और बद्तर हो जायेगी। इन देशों को न केवल विकास की ऊँची रफ्तार को बनाये रखना होगा बल्कि निवेश व ऊँची बचत भी करनी होगी जिसके लिये अधिकाँश लोगों को उच्च उत्पादक रोजगार प्रदान करना होगा। (नये आते हुये लोगों के लिये उच्च आय सृजन वाले रोजगार उच्च बचत, उच्च निवेश, भविष्य में बुढापें में अच्छी तरह जीने के लिये उच्च संपति सृजन व उच्चतर आय वर्ग की प्राप्ति पर्याप्त पेंशन की व्यवस्था)।

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 4, Issue 01, Jan 2021

इस चक्र को ठीक से पूरा करना होगा ताकि 2050 के आस–पास अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं बूढे लोगो के लिए पेंशन व मेडिकल स्कीमों के भार से उस तरह न कराहें जैसा आज की अधिकतर यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं में हो रहा है।[17] सन 2035 के आस–पास विकासशील देशों का 'पापुलेशन मूमेंटम' भी जन्म दर में कमी के समय ही कमजोर पड जायेगा और तत्पश्चात युवाओं की तुलना में इन अर्थव्यवस्थाओं में बूढें लोगों की संख्या बडने लगेगी। 2050 आते आते आज की तुलना में बूढ़े लोगों की संख्या लगभग दो गुना हो जायेगी। 65 वर्ष से ऊपर वाले लोगो का अनुपात 20 से 65 वर्ष की आयु वर्ग के लोगों की तुलना में लगभग बराबर हो जायेगा। चीन और भारत जैसे देशों में यह अनुपात 45 प्रतिशत को पार कर जायेगा। इन बुढ़ाते हुए लोगो को स्वास्थ्य एवं पेंशन पर खर्च, यदि विकसित देशों की भांति किया जायेगा, तो काफी बढ जायेगा।[18]

भारत जैसे देशों में, जहाँ सामाजिक सुरक्षा का कोई व्यापक नेटवर्क नही है और सरकार नवीन सरकारी कर्मचारियों तक की पेंशन से पल्ला झाड चुकी है, पेंशन सुधार जारी है आदि, वहाँ शायद भविष्य में वृद्धों की सामाजिक सुरक्षा का प्रश्न बहुत परेशान न भी करें, परन्तु फिर भी यह कहना जल्दबाजी होगी। श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से भारत में संगठित क्षेत्र की भूमिका अत्यन्त सीमित है। असंगठित क्षेत्र मे श्रमिकों की सुरक्षा प्रदान करने हेतु किसी प्रभावी व्यवस्था की स्थापना अभी तक नही हुई है। पेंशन फंडों को शेयर व इक्विटी मार्केट से जोड़ कर उच्च रिटर्न हासिल करने की व्यवस्था भी अभी विकास के आदिम चरण में ही है।[19] ऐसे में भारत जैसे देश किस हद तक अपनी 'डेमोग्राफिक गेन' को वास्तविक गेन में बदल पायेगा, अभी यह कहना मुश्किल ही है। दूसरी तरफ शिक्षा के प्रतिफल जिस तरह से वर्तमान समय में भूमंडलीकरण व अपनी कठिन प्रतियोगिता के कारण प्राईमरी शिक्षा से उच्च शिक्षा के पक्ष में रूपान्तरित (हस्तांत्ररित) हुऐ हैं। उससे भारत के लिए अपनी उभरती हुयी युवा शक्ति के कोष को उच्च रोजगार व उत्पादक क्षेत्रों में स्थापित करने की चुनौती और अधिक गंभीर हो उठी है।[20] उच्च शिक्षा का विकास तकनीकोन्मुखी व पूँजी प्रधान होता है और भारत ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विकास करना अभी प्रारम्भ ही किया है। पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप भी अभी पूरी तरह जोर नहीं पकड़ पाई हैं ऐसे में यदि हम पिछ़ड जाते है और भारत के वर्तमान युवा अपने लिए परिसम्पत्तियों का सृजन कियें बिना ही अपनी युवावस्था बिताकर वृद्धावस्था में प्रवेश करते है तो यह स्थिति काफी खराब हो सकती है। 'या तो विकास करों अथवा नष्ट हो जाओ' इसके अतिरिक्त कोई बीच का रास्ता नही है।

इस प्रकार से विश्व की वर्तमान स्थिति काफी दुःखद है एक तरफ अधिकांश विश्व की विपरीत अर्थव्यवस्थाऐं वयोवृद्ध होती जनसंख्या के भार से अवसाद ग्रस्त है और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बाजार की खोज में विश्व व्यापार संगठन की छत्र–छाया में अब तीसरी दुनिया का रूख करना पडा है। ये कम्पनियाँ इन देशों के मूल्यावन पर्यावरणीय संसाधनों को अत्यन्त अल्प कीमतों पर प्राप्त कर उनका निर्मम दोहन कर बने हुऐ स्वच्छ माल को पुनः विकसित देशों में बेच सकती है और अल्पविकसित देशों का उच्च आय वर्ग भी इनका बाजार है। अतः ये निगम बिना किसी जवाबदेही के पर्यावरण को भयंकर क्षति पहुँचा कर केवल मुनाफे के आधार पर संचालित हो रही है। दूसरी ओर यह इन देशों की जनसंख्या को ऐसे उपभोग ढ़ाँचें व पदार्थो का लती बना सकता है। जिनका

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 4, Issue 01, Jan 2021

उत्पादन पर्यावरण पर अत्यन्त दबाव डालता है। पेप्सी–कोला व कोका–कोला इसका उदाहरण है। वास्तव में यह मुनाफे की भूख है जिसने हालात इस कदर बिगाड दिये है। अनावश्यक व विलासिता की चीजों का बडे पैमानें पर उत्पादन किया जा रहा है। पालीथीन, क्लोरो–फलोरो कार्बन, कार्बन मोनोआक्साइड, भारी धातुऐं इत्यादि हर जगह पर्यावरण में घुल–मिल गयी है और इनका उत्पादन लगातार बढता जा रहा है। रात को पार्टिया मनानें के चक्कर में हम सुबह का नैसर्गिक सौन्दर्य देखने से वंचित हो गये है। आटो व कार की सुविधा ने हमें पैदल चलना भुला दिया है। सुबह से शाम तक एयरकंडीशन में व्यतीत होने के कारण सर्दी गर्मी जाडा और बरसात का मिजाज भी भूल गये है। मनुष्य प्रकृति से लगातार दूर होता जा रहा है और उसका तन और मन लगातार रोगों का घर बनता जा रहा है। क्या हम पर्यावरण के विरूद्ध मूल्यों को प्रोत्साहित नहीं कर रहे है। क्या ऐसे पर्यावरण की रक्षा और उसका आन्नद प्राप्त हो सकेगा?

वास्तव में यह सही है कि मानव समुदाय की जनसंख्या 2050 में स्थिर हो जाने की संभावना है और यह भी सही है कि विकासशील देशों की बडी हुई जनसंख्या को पर्यावरण के महाविनाश के लिए जिम्मेदार ठहराना भी उचित नही है। मुनाफे की खोज ने पूँजी ने जिस विकास के ढाँचे को प्रोत्साहित किया है वह अन्ततः जनविरोधी साबित हुआ है। इसने वैश्विक पर जनसांख्यिकीय असंतुलन को गहरा करनें में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। और दूसरी तरफ इसी संगठित पूंजी ने निजी लाभ के लिए पर्यावरण को नष्ट करने में कोई कोर कसर नही उठा रखी है। यदि शीध्र ही मनुष्य ने अपने रहन–सहन की आदतों और उपभोग ढाँचे का विवेकीकरण नहीं किया तो हम अपनी इस सुन्दर पृथ्वी को शीध्र ही खो बैठगें और वर्तमान स्थिति यह है कि संगठित पूँजी दिन ब दिन और मजबूत होती जा रही है। शायद एक दिन वे चांद या किसी अन्य ग्रह पर पार्टी मना रहे होंगे और हम सब खुद को मिटते हुए देख रहे होंगें।

जरूरत यह है कि आज मनुष्य को समझ आ जाये। यह भी समझा जाये कि मुनाफे के ऊपर भी एक चीज है और वह है मानव जीवन। बेशक यह अर्थशास्त्र के बुनियादी सिद्धान्तों के केन्द्र मे नही है। मगर संधारणीय विकास कार्य हेतु आवश्यक है कि बड़ते हुए आय की असमानताओं को कम किया जाए। किन्तु इसका सही रास्ता श्रमिक वर्ग को दक्ष तथा उत्पादक बनाना है। विश्व स्तर पुर कुल श्रमिक प्रतिपूर्तिया बडी है तथा उभरते हुऐ बाजारों में, विशेषकर एशियाई बाजारों में वास्तविक मजदूर तेजी से वैश्विक स्तर प्रचलित मजदूरियों के अनुरूप होने की दिशा में अग्रसर हैं, फिर भी कुल आय में श्रम का भाग विकसित देशों में 1980 से लगातार गिर रहा है और दक्ष व अदक्ष श्रमिकों के बीच की आय का अंतर भी बढ रहा है। त्वरित तकनीकि परिवर्तन ने कुल आय में श्रम का हिस्सा घटाने मे निर्णायक भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त दुनिया भर में आय की विषमता, खासकर एशिया में तेजी से बड़ रही है जो अस्वस्थ उपभोग ढांचें को बढ़ावा देकर पर्यावरण पर अतिरिक्त व अनावश्यक दबाव बना रही है।[21] बहुउद्देशीय निगमों की टेक्नोलाजी मुख्यतः श्रम विरोधी है।

अतः इसने तेजी से श्रम के हिस्से को नुकसान पहुँचाया है[22] यह कम्पनियाँ लोकल उत्पादकों की तुलना में कम लोगों को रोजगार प्रदान करती है[23] परन्तु इसके भुगतान संतुलन पर दीर्घकालीन

और गहरे विपरित असर होते हैं।[24] और यह उपभोग ढाँचे को विकृत करती है, घरेलू बचतों को विपरित दिशा में प्रभावित करती है।[25] यह कम्पनियाँ पूंजी का संकेन्द्रण और न्यूनतम पूंजी की आवश्यकता के स्तर को बड़ा कर स्थानीय व छोटे उत्पादकों को प्रतिस्पर्धा से बाहर कर देती है तथा आक्रामक प्रचार, परिष्कृत तकनीक तथा बेहतर मार्केटिंग स्ट्रेटजी के चलते शीध्र ही स्थानीय प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर पूंजी के उदग्र संकेन्द्रण का रास्ता, प्रशस्त कर देती है[26(a&b)] स्थापित होने के कुछ समय पश्चात ही लाभ का महत्वपूर्ण हिस्सा वापस अपने मुख्यालय देश को प्रत्यावर्तित करनें लगती है। विचार्ड के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका की कम्पनियों द्वारा अपनी स्थापना लागत का 4.2 गुना वापस प्रत्यावर्तित किया गया।[27] नतीजे के तौर पर अमेरिका कम्पनियों की विदेश में सम्पत्तियों से कमाई, विदेशों की अमेरिका में परिसम्पतियों से कमाई की तुलना में निर्णायक रूप से ज्यादा तेजी से बड़ी है।[28]

परिणामस्वरूप बहुदेशीय निगमों का आकार उनकी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में लगातार बढ़ रहा है। विश्व के 200 बहुद्देशीय निगमों की सम्पत्ति विश्व के 80 प्रतिशत निर्धनतम लोगों की सम्पत्ति की दुगनी है। विश्व के प्रथम 100 आर्थिक प्रतिष्ठानों में 51 बहुदेशीय निगम है तथा केवल 49 देश है। विशालकाय बहुदेशीय कम्पनियां इस धरती पर चलते–फिरते डायनासौरों के सामान विशाल और शक्तिशाली है।[28] कई बहुदेशीय कम्पनिया इतनी प्रभावशाली है कि वे वैश्विक आर्थिक संगठनों को पर्दे की पीछे से लगातार अपनी आवश्यकताओं के अनुसार संचालित कर रही है। IMF तथा विश्वबैंक, विश्व व्यापर संगठन की नीतियां निर्धारित करनें में बहुदेशीय निगमों की महत्वपूर्ण भूमिका है और नतीजे के तौर पर वे विकासशील देशों के बाजारों को अपनी शर्तो के मुताबिक व अपने विकास के लिए वांछित वातावरण में खुलवानें में कामयाब हो गयी है। विकासशील देशों के तेज विकास के आंकडें अपने भीतर कहीं बहुदेशीय निगमों के तीव्र विकास का राज भी अपने भीतर छिपायें बैठे है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अपने स्थानीय प्रतिदृन्दियों को समाप्त करनें हेतु अपनायी गयी तेजी आर्थिक विकास की तेज दर में दिखाई दे रही है। शहर से लेकर गांव–गांव तक की दुकानों पर इन्ही निगमों का सामान बिक रहा है। हस्तशिल्प व लघु कुटीर उद्योगों पर दबाव बड़ता जा रहा है और वे धीरे–धीरे विलुप्त होते जा रहे है। इन सब चीजों का असर पर्यावरण पर घातक तरीके से पड़ रहा है।

पर्यावरण प्रदुषण के विषय में जो सीमित अध्ययन हुए है उनसे प्राप्त आँकड़े और निष्कर्ष विस्मित कर देने वाले है। अब यह लगभग आम सहमति है कि बढ़ते नगरीकरण व कृषि क्षेत्र के कारण वनों एवं जैव विविधता का खतरनाक स्तर का क्षय हुआ है। ओजोन परत का क्षय व ग्लोबल वार्मिग भी एक अत्यन्त खतरनाक समस्या बनती जा रही है। वैज्ञानिकों का कहना है कि हिम युग आसान हो सकता है और धरती के मौसम से शीघ्र ही कुछ क्रान्तिकारी बदलाव हो सकते है जो मानव जाति के समक्ष अस्तित्व का संकट खड़ा कर सकते है। मौसम के ये बदलाव मानव के आवासीय व कृषि भूगोल में क्रान्तिकारी व अत्यन्त कष्टकारी परिवर्तन ला सकते है। रेगिस्तानों का लगातार प्रसार, मृदा की दिनों–दिन खराब होती गुणवत्ता, भूमि की ऊपरी परत का क्षरण, बाड़ और अकाल की बड़ती तीव्रता एवं आवृत्ति, समुद्री तुफानों के क्षेत्र में तथा तीव्रता में बदलाव, अत्यधिक

**eISSN 2581-8996**
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 4, Issue 01, Jan 2021

जल दोहन के कारण उत्पन्न भूकम्प का खतरा, भूजल स्तर में त्रीव गिरावट, पेयजल की लगातार घटती उपलब्धता व उसका खतरनाक हद तक प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण के खतरनाक प्रभाव आदि आज विश्व स्तरीय चिन्ता के विषय बन गये है और इनसे उत्पन्न चिन्ता और आंकडें स्थानीय व वैश्विक दोनों ही स्तर पर खतरनाक होती स्थिति की ओर संकेत करते है। पर्यावरण पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा अलग–अलग देशों की सरकारी व गैर सरकारी एजेंसियों की समय–समय पर उपलब्ध रिर्पोट खतरनाक स्थिति की ओर संकेत कर रही है। इसका मानव तथा धरती पर उपलब्ध समस्त प्राणी जगत के जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। पशु–पक्षियों की अनेकानेक जातिया–प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी है। जो पूर्णतयः विलुप्त नहीं हुई है उनमें से अधिकांश खतरे में है या विलुप्ति के कगार पर है। प्राणियों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे है। नजीततन मानव के शत्रु कीटों व प्राणियों तथा बैक्टीरिया–वायरसों में वृद्धि हो रही है। रोग फैलानें वाले तथा फसल नष्ट करनें वाले कीटों की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती जा रही है। दूसरी तरफ दूषित पेयजल, वायु व खाद्य पदार्थो के कारण मानव बीमरियों के आक्रमण के प्रति ज्यादा संवेदनशील व कम प्रतिरोधी होता जा रहा है। मानव जीवन के लिए खतरा बडता जा रहा है और स्वास्थ्य की कीमत तथा भावी पीड़ियों की कीमत पर ही हम इस *unsustainable development* को जारी रख सकते है।

अतः हम अति जनसंख्या के तर्क को सिर्फ खाद्य सुरक्षा से जोड कर न देखे बल्कि उसके समस्त पर्यावरणीय आयामों पर भी विचार करें और पर्यावरण के विनाश को मात्र बढती हुई जनसंख्या से ही न जोडे बल्कि उसकों प्रभावित करनें वाले इतर कारकों पर भी ध्यान दें। यह उचित ही है कि हम पर्यावरण के इस महाविनाश के प्रति अपनी संवदेनशीलता प्रकट करते हुए इसके वास्तविक कारणों के विनाश पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। यह समझ लेने की जरूरत है कि पर्यावरण के इस विनाश का सम्बन्ध बढ़ती हुई जनसंख्या से अवश्य ही है परन्तु इसका अधिक गहन सम्बन्ध विकास के मौजूदा ढांचे से है। यह एक ऐसे उपयोग ढाँचा का निर्माण करता है जिससे संसाधनों की लगाम लगभग अधिकतर धनी देशों तथा धनी लोगों के हाथ में है। गरीब देशों की जनसंख्या जो बहुत तेजी से बढ़ रही है इन संसाधनों का उपयोग नही कर पाते है। अतः दोषी वे अधिक है जो विश्व के संसाधनों का अधिकाँश हिस्सा अपने लाभ व विलासिता के लिए अपव्यय कर रहे है।

इस प्रकार निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि विकास के नाम पर अत्यधिक भौतिक वादी संस्कृति को बढावा देना बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का पक्ष हो सकता है परन्तु जन साधारण का हित चमक–दमक और दिखावें का जीवन न जी कर सादा जीवन उच्च विचार में निहित है बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को असीम स्वच्छन्दता न देकर लधु एवं कुटीर उद्योगों के लिए प्रतियोगी एवं सक्षम स्वच्छ तकनीक का विकास किया जाए एवं श्रम प्रधान उद्योगों का विकास कर विषमता पर प्रभावी रोक लगायी जायें और पर्यावरण की रक्षा हेतु स्थानीय समुदायों को सक्षम एवं अधिकार सम्पन्न बनाया जाये। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उच्च शिक्षा एवं उच्च तकनीक की जानकारी उपलब्ध करायी जाये, ताकि वह राष्ट्र के लिये तथा अपने लिए मूल्यवान सम्पत्ति तथा उच्च जीवन

स्तर एवं वांछित आय के स्तर का सर्जन कर सके। पेंशन सुधार एवं श्रम सुधार तेजी से लागू किया जाए ताकि राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित हो सके। पर्यावरण को दूषित करने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही सुनिश्चित की जाए तथा प्राकृतिक संसाधनों को प्रगाामी रूप से ऊंचे मूल्यों पर ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को प्रयोग करनें की अनुमति दी जाए। आशा है कि इन सब उपायों को अपनाकर हम निश्चित ही जनसंख्या पर्यावरण और विकास की पहेली का संतोषजनक हल निकाल सकते है।

## ***Reference & Notes.***

1. उदाहरण के लिये प्रकृतिवादियों का नारा 'प्रकृति को ओर लौटो' या स्थाई विकास (*sustainable development* ) की वर्तमान मांग का सन्दर्भ दिया जाता है।

2. 'हाऊ मैनी पिउपल कैन द अर्थ' जोएल. ई. काहन डब्ल्यू डब्ल्यू नारटन एण्ड कम्पनी, 1995, पृष्ठ–261

3. आधुनिकता का जो वर्तमान रूप भूमण्डलीकरण के दौर में दिखाई देता है, विश्व के अनेक समुदायों में, व्यापत प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंध एवं संरक्षण की व्यवस्था का धुर विरोधी है। यह पारम्परिक व्यवस्था जो अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत है, दरकिनार कर दी गयी है जिसकी वजह से ही पर्यावरण से संबंधित परेशानियाँ पैदा हो रही है।

देखें. ब्रैंडन मार्टिन ब्रेटनवुड प्रोजेक्ट, 2000 मार्च, पृष्ठ 37–38.

इसके साथ ही उपनिवेशवादी देशों के लालच, निर्मम लूट व सब कुछ तबाह कर–देने की निर्मम भूख भी कम जिम्मेदार नही है।

देखें. जे. डब्ल्यू स्मिथ 'वर्ल्ड वेस्टेड वैल्थ', खण्ड दो इंस्टीटयूट फार इकोनोमिक डेमोक्रेसी, 1994, पृष्ठ 85–97.

और देखें– रिचर्ड एच. राबिन्स 'ग्लोबल प्राब्लम एण्ड द कल्चर आफ कैपिटलिज्म', प्रकाशक– एलिन एण्ड बैमिन, 1999, पृष्ठ 156–157.

4. विश्व विकास रिर्पोट 1998, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम।

5. वन्दना शिवा 'स्टोलन फारेस्ट' साऊथ एण्ड प्रैस, 2000, पृष्ठ 70–71.

6. अमर्त्यसेन व जीन ड्रीजी 'वालिटिकल इकानामी आफ हंगर', आक्सफोर्ड क्लेरेन्ड प्रेस, आक्सफोर्ड सन 1990.

7. अर्नी विगस्टेन 'पूअर्टी, इनइक्वालिटी एण्ड डेवलपमेंट', द्वारा नार्मन गेमल कृत 'सर्वेस इन डेवेलपमेंट इकानामिक्स

(आक्सफोर्डः बासिल बलेकविल लिमिटेड 1987), पृष्ठ 154–155

8. कमलनयन काबरा 'भूमण्डलीकरण के भंवर में भारत' – 2002 पृष्ठ 48–56

9. महमूद ममदानी 'द मिथ आफ पापुलेन कन्ट्रोल' – (लन्दनः मन्थली रिव्यू प्रेस, 1974), पृष्ठ 14

10. पी.सी. जोशी, 'पापुलेशन एण्ड पूवर्टी – द मॉरल डिस्कार्ड' – (संपादन) आशीष बोस – पापुलेशन इन इण्डियाज डवलमेंट' – विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली 1974, पृष्ठ 84

11. ए.जे. कोल और एडगर एम. हूवर, 'पापुलेशन ग्रोथ एण्ड इकानामिक डवलमेंट इन लो इनकम कन्ट्रीज' प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस 1977, पृष्ठ 10

12. *(a)* किग्सले डेविस 'द वर्ल्ड डेमोग्राफिक ट्रान्जिशन' एनाल्स आफ द अमेरिकन एकेडमी आफ पोलिटिकल एण्ड सोशल सांइस' 1945, पृष्ठ 10

*(b)* फ्रेक नोटेस्टाइंन 'पोपुलेशन – द लांग न्यू' – थियोडोर शुल्टज द्वारा संपादित 'फूड फार द वर्ल्ड' से उदधृत। शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस

13. माइकेल पी.टोडेरो 'इकानामिक डेवेलमेंट' रीडिंग मेसाचुसेटसः एडीसन वेसले लांग इनकारपोरेशन सिक्सथ एडीशन, 1998. पृष्ठ 213—228

14. सुब्रमनयम स्वामी 'पापुलेशन ग्रोथ एण्ड इकानामिक डेवलेपमेंट' उदधृत आशीष बोस कृत — पापुलेशन इन इण्डियाज डवलमेंट'—विकास पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली 1974, पृष्ठ 214

15. अमर्त्यसेन 'पापुलेशन डेलुसन एण्ड रियालिटी', न्यूयार्क रिव्यू आफ बुक 41(15), 1994, पृष्ठ 1—8.

16. माइकेल ब्रोअर एवं वारेन लियोन, यूनियन आफ कसर्न्ड साइन्टिस्टस, 1999,

17. 'फाइनेन्स एण्ड डेवलमेंट' सितम्बर 2006, पृष्ठ 14—22, 28—31.

18. 'फाइनेन्स एण्ड डेवलमेंट' सितम्बर 2006, पृष्ठ 37, तालिका 1, पृष्ठ 30—31.

19. रूद्र दत्त एवं सुन्दरम भारतीय अर्थव्यवस्था 2009

20. फाईनल डाफ्ट यू.जी.सी. रिपोर्ट आन रिफार्म्स इन हायर एजुकेशन 2009 पृष्ठ 27—31

21. 'फाइनेन्स एण्ड डेवलमेंट' जून 2007, पृष्ठ 20—25.

22. रोनाल्ड मुलर 'मल्टीनेशनल कारपोरेशन एण्ड द अण्डरडेवलमेंट आफ द थर्ड' इन चार्ल्स के. विल्बर (संपादित) द पालिटिकल इकानामी आफ डेवलेपमेंट एण्ड अण्डरडेवलेपमेंट — न्यूयार्क, रेण्डम हाऊस, 1973, पृष्ठ 132

23. रोनाल्ड मुलर तथा रिसर्ड मारगेन्सटर्न 'द इम्पेक्ट आफ मल्टीनेशनल कारपोरेशन आन द बेलेन्स आफ पेमेटाट आफ एल. डी.सी. एन इकानामेट्रिक एनालिसिस आफ एक्सपर्ट सेल, पेपर प्रेजेन्टेड इन इकानामेट्रिक सोसाइटी प्रोग्राम आफ द अमेरिकन एसोसियेशन, एनुअल मीटिंग, टोरंटो, दिसम्बर 28, 1972.

24. ए.पी. थर्लवाल 'ग्रोथ एण्ड डेवलेपमेंट — बिद स्पेशल रेफरेंस टू एन डेवलेपिंग इकानामीस' लन्दन, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, सिक्सथ एडीशन, 1999, पृष्ठ 401.

25. उक्तवत् ही—*opcit.* पृष्ठ 401.

26. *(a)* एस लाल ''मल्टीनेशनल एण्ड मार्केट स्ट्रम्चर इन एन ओपन डेवलपमेंट इकानामी, द केस आफ मलेशिया' 1979, उदधृत मार्क कैसन एण्ड राबर्ट. डी. पिअर्स., 'मल्टीनेशनल एण्ब्रप्राइज, इन एल. डी. सीस.'' इन जारमन गेमेल (एडीटेड) 'सर्वेस इन डवलमेंट इकानामिक्स' बासिल ब्लेकविल लिमिटेड, 1972

*(b)* पाल स्ट्रीटन 'द फ्रंटीभर आफ डेवलेपमेंट स्टडीज' लन्दन, मैकमिलन, 1972, पृष्ठ 234.

27. ओ. जी. विजार्ड ''यू.एस. डायरेक्टर इन्वेस्टमेंट एब्राड इन 1979'' सर्वेज आफ बिजनेस, 1980, पृष्ठ 24—25.

28. 'फाइनेंन्स एण्ड डेवलेपमेंट' मार्च 2006, चार्ट 4, पृष्ठ 40.

29. निवेदिता प्रभु ''द नम्बर आफ अप इन द 200 क्लब'' इकानामिक टाइम्स, अक्टूबर 4, 1998, पृष्ठ 1.